स्वतंत्रता के उपरान्त भारत
(खंड-4)

- भारत का विभाजन, भारत में हिंदू-मुस्लिम दंगे और शरणार्थियों का संकट तथा इनका भारत की राजनीति एवं विदेश नीति पर प्रभाव
- भारतीय यूनियन में देशी रियासतों का विलय
- एक प्रजातांत्रिक संविधान के माध्यम से एक सामंती एवं औपनिवेशिक समाज को आधुनिक राष्ट्र के रूप में संगठित करना
- भारत के विशाल भौगोलिक आकार एवं सांस्कृतिक विविधता के बावजूद एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण जो 'विविधता में एकता' का उदाहरण बना।
- कमजोर वर्ग- अल्पसंख्यक समुदाय, महिलाएँ, दलित एवं पिछड़ी जातियों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना।
- आर्थिक सुधार कार्यक्रम, नेहरूवादी आर्थिक मॉडल, कृषि सुधार, औद्योगीकरण, पंचवर्षीय योजना
- एक प्रगतिशील विदेश नीति के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भारत का स्थान निर्धारण

भारत का विभाजन, भारत में हिंदू-मुस्लिम दंगे और शरणार्थियों का संकट तथा इनका भारत की राजनीति एवं विदेश नीति पर प्रभाव

- नवगठित पाकिस्तान और भारत के बीच जनसंख्या का आदान-प्रदान माउंटबेटन योजना का हिस्सा नहीं था, लेकिन भारत एवं पाकिस्तान की सरकारों को अपने-अपने अल्पसंख्यकों को पूरी सुरक्षा देने को स्पष्ट रूप से कहा गया था। परंतु 15 अगस्त, 1947 के दिन अचानक दंगे आरंभ हो जाने के कारण जनसंख्या का पलायन शुरू हो गया। पंजाब में ही लगभग 1.40 लाख जनसंख्या का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पलायन हुआ।
- 8 अप्रैल, 1950 ई. को भारत एवं पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों के बीच अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये **'नेहरू-लियाकत समझौता'** हुआ। इस समझौते में अल्पसंख्यकों के संरक्षण का प्रावधान होने के बावजूद पाकिस्तान के दोनों हिस्सों से हिंदू, सिख आदि का आना सतत् रूप से जारी रहा। अत: जनसंख्या प्रवास स्वतंत्र भारत की सरकार के समक्ष एक चुनौतीपूर्ण घटना बनकर उपस्थित हुआ। इस घटना के कारण स्वतंत्रता पर काला धब्बा लग गया। विभाजन के दौरान लगभग 10 लाख लोग मरे और लगभग 2 करोड़ लोगों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पलायन हुआ।

विभाजन का प्रभाव

संविधान पर प्रभाव :-

1. आरंभ में ऐसा सोचा जा रहा था कि भारत में एक संघीय व्यवस्था कायम की जाएगी, परंतु विभाजन ने संविधान निर्माताओं को भयभीत कर दिया। अत: नए संविधान में **'फेडरेशन'** की जगह **'यूनियन'** शब्द का प्रयोग किया गया। केन्द्रीय सरकार के समानांतर राज्य सरकार की स्थिति बहुत कमजोर कर दी गई, अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र में निहित कर दी गईं तथा आपातकाल का प्रावधान लाकर केंद्र के हाथ में एक बड़ा हथियार दे दिया गया।
2. भारत में जिस प्रकार दलित वर्ग को विधानमंडल में आरक्षण मिला, पृथक् निर्वाचन समाप्त करने के पश्चात् भी मुस्लिमों को कोई आरक्षण नहीं मिला।
3. राजभाषा के मुद्दे पर भी उर्दू अथवा हिंदुस्तानी भाषा की स्थिति नीची हो गई। राजभाषा के रूप में देवनागिरी लिपि में लिखित हिंदी को मान्यता मिली, उर्दू की दावेदारी समाप्त हो गई। पहले यह अनुमान किया गया था कि कम-से-कम संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित 14 भाषाओं में उर्दू को भी स्थान मिलेगा, परंतु ऐसा नहीं हुआ।

4. विभाजन के कारण नागरिकता का मुद्दा भी उलझ गया तथा यह बहुत लंबा खिंच गया। अंततः संविधान सभा इस पर निर्णय नहीं ले सकी और उसने यह मुद्दा भारत की नयी संसद पर छोड़ दिया। अंत में, 1955 में संसद में इस पर कानून बनाया गया।

भारत की घरेलू नीति पर प्रभावः-

- दंगे और विभाजन की स्मृति ने भारतीय राजनीति में विभाजन का स्थायी बीज बो दिया। हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच पारस्परिक अविश्वास बना रहा। अतः अल्पसंख्यक समूहों को राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करना कठिन हो गया। फिर यह वैमनस्य समय-समय पर दंगों के रूप में भी प्रकट होता रहा, इसलिये अल्पसंख्यकों का मुद्दा भारतीय राजनीति का प्रमुख मुद्दा बना रहा।

भारत की विदेश नीति तथा दक्षिण-एशिया की राजनीति पर प्रभावः-

1. **शरणार्थियों की समस्याः-** भारत की पूर्वी सीमा पर चकमा शरणार्थी तथा रोहिंग्या शरणार्थी की समस्या विभाजन की स्थायी देन है।
2. **दक्षिण एशिया में तीन विभिन्न राष्ट्रों का गठन तथा उनके बीच तनावः-** दक्षिण एशिया में भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश तीन राष्ट्र बन गए तथा इनके बीच भौगोलिक सीमा रेखा का निर्धारण आज भी चुनौती बनी हुई है।
3. विभाजन की एक प्रमुख देन है **परमाणु हथियारों की होड़ तथा आतंकवाद की समस्या**। पाकिस्तान ने भारत से सामरिक समानता हासिल करने के लिए परमाणु हथियारों से लेकर आतंकवाद, सभी का सहारा लिया। यह आतंकवाद केवल दक्षिण एशिया के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए खतरा बन गया है।
4. विश्व के अन्य क्षेत्रों में क्षेत्रीय संगठन; यथा- आसियान, सेलाक (लैटिन अमेरिका में) आदि निरंतर प्रगति कर रहे हैं, परंतु सार्क का विकास अवरुद्ध हो गया और इसका कारण है- भारत-पाकिस्तान का तनाव।

भारतीय यूनियन में देशी रियासतों का विलय

- ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा विस्तार के क्रम में भारत के लगभग 3/5 भाग पर नियंत्रण स्थापित कर लिया गया था, जबकि 2/5 भाग उनके क्षेत्र से बाहर रहा और वहाँ देशी शासक शासन करते रहे। हालाँकि 1857 के पश्चात् भी ब्रिटिश ने भारत में अप्रत्यक्ष रूप में ब्रिटिश विस्तार की नीति जारी रखी और इन राज्यों पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित कर लिया था। अतः जब भारत से ब्रिटिश के जाने का समय आया, तो इन राज्यों के भविष्य का प्रश्न भी उपस्थित हुआ।
- माउंटबेटन योजना में देशी रियासतों के लिए यह प्रावधान था कि भारत और पाकिस्तान दो डोमिनियन होंगे तथा देशी रियासतों को अपना विलय इन्हीं में से किसी एक डोमिनियन के साथ करना होगा। किस डोमिनियन के साथ वे विलय करेंगे, यह उनकी भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करेगी।

देशी रियासतों की प्रजा में राष्ट्रीय जागृति का विकास-

- ब्रिटिश दबावों तथा देशी नरेशों की शत्रुतापूर्ण कार्यवाही के बावजूद देशी रियासतों की प्रजा भी आधुनिक विचारधारा तथा राष्ट्रवाद की भावना से अप्रभावी नहीं रह सकी। इसके लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी थे –

1. असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन ने देशी रियासतों के आंदोलन को सर्वाधिक प्रभावित किया था क्योंकि इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप जहाँ एक तरफ अनेक रियासतों में राज्य जन कॉन्फ्रेंस का गठन हुआ, वहीं दूसरी तरफ कांग्रेस ने रियासतों के संबंध में अग्रगामी नीतियाँ अपनाना स्वीकार कर लिया।
2. 1935 के भारत शासन अधिनियम ने भी उन्हें आकर्षित किया क्योंकि उसमें देशी रियासतों को मिलाकर संघ बनाने की बात कही गई थी।
3. 1937 में प्रांतीय सरकारों के गठन ने भी देशी रियासतों की प्रजा की आकांक्षा को जगाया तथा अनेक राज्यों में आंदोलन शुरू हो गया।
4. 1940 के दशक में क्रिप्स मिशन, कैबिनेट मिशन, अंतरिम सरकार का गठन, संविधान सभा का गठन आदि ने देशी रियासतों की प्रजा को स्वतंत्रता की ओर आकर्षित किया।

देशी रियासतों के आंदोलन के प्रति कांग्रेस का रुखः-

आरंभ में कांग्रेस ने अपने आप को देशी रियासतों के आंदोलन से दूर रखा था, लेकिन पहली बार 1920 के नागपुर अधिवेशन में इसने यह घोषित किया कि देशी रियासतें भारत की अभिन्न अंग हैं। परन्तु तब इसने आंदोलन चलाने की बात नहीं की, इसने केवल यह कहा कि अगर देशी रियासतों के लोग अपनी पहल पर आंदोलन चलाना चाहें, तो हमारी सहानुभूति उनके साथ होगी। अतः अब विभिन्न देशी रियासतों में प्रजा मण्डल का गठन होने लगा और फिर 1927 ई. में अखिल भारतीय जन कॉन्फ्रेंस का गठन, बलवंत राय मेहता, मणिलाल कोठारी तथा जी. आर. अभ्यंकर के नेतृत्व में हुआ। फिर 1937 ई. में जन कॉन्फ्रेंस ने अनेक राज्यों में आंदोलन आरंभ किया।

फिर, 1939 के त्रिपुरी अधिवेशन में कांग्रेस ने पहली बार यह घोषित किया कि अब भविष्य में जो भी आंदोलन होगा, वह ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों, दोनों में साथ-साथ होगा।

आगे कैबिनेट मिशन योजना (1946 ई.) में भी रियासतों की जनता के बारे में कोई प्रावधान न होने पर अखिल भारतीय राज्य जन कॉन्फ्रेंस ने प्रजा के द्वारा निर्वाचित सदस्यों को ही संविधान सभा में भाग लेने का अधिकार संबंधी एक प्रस्ताव पारित किया। उसकी इस माँग का समर्थन कांग्रेस द्वारा भी किया गया। आगे राज्य जन कॉन्फ्रेंस ने भी कांग्रेस में विलय का फैसला किया और कांग्रेस ने उसको मान्यता प्रदान कर दी।

देशी रियासतों के विलय में बाधाएँ:-

1. कुछ देशी रियासतों के शासक ब्रिटिश सर्वोच्चता की समाप्ति के पश्चात् स्वतंत्र होने की प्रतीक्षा में थे, वे तात्कालिक राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर अपनी स्थिति मज़बूत करना चाहते थे।
2. स्वयं ब्रिटिश काउंसलर (अधिकारी) के द्वारा देशी शासकों की महत्त्वाकांक्षा को प्रोत्साहन दिया जा रहा था क्योंकि ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय उपमहाद्वीप में अपना प्रभाव बनाए रखना चाहती थी।
3. मोहम्मद अली जिन्ना ने भी भारतीय शासकों की महत्त्वाकांक्षा को प्रोत्साहित किया। 18 जून, 1947 को दिये गए अपने एक वक्तव्य में जिन्ना ने देशी शासकों के स्वतंत्र रहने के अधिकार को स्वीकार किया था।

भारत के साथ देशी रियासतों के विलय को प्रेरित करने वाले कारक:-

1. **जन-आंदोलन का दबाव:-** भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने केवल ब्रिटिश भारत पर ही अपना प्रभाव नहीं डाला था, बल्कि देशी रियासतों की जनता को भी आंदोलित कर दिया था। अब स्वयं देशी रियासतों की जनता स्वतंत्र भारत की प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में शामिल होने के लिए उत्साहित थी।
2. **भारतीय राज्यों के विलय के मुद्दे पर कांग्रेस का असमझौतावादी रुख:-** कांग्रेस ने भारतीय शासकों के स्वतंत्र होने के अधिकार को अस्वीकार कर दिया तथा देशी रियासतों को अपनी क्षेत्रीय स्थिति के अनुकूल भारत अथवा पाकिस्तान के साथ अपना विलय करने को कहा। जवाहर लाल नेहरू ने यह घोषित किया कि अगर देशी रियासतें संविधान सभा की कार्यवाही में हिस्सा नहीं लेंगी, तो उनके इस कदम को शत्रुतापूर्ण माना जायेगा।
3. **सरदार वल्लभभाई पटेल के द्वारा अपनायी गयी छड़ी और पुरस्कार की नीति :** देशी रियासतों के विलय में वल्लभभाई पटेल तथा उनके सचिव वी. पी. मेनन की अहम भूमिका रही। पटेल ने इन शासकों को आकर्षित करने के लिए एक बड़ी ही व्यावहारिक रणनीति अपनाई, जिसे छड़ी एवं पुरस्कार की नीति का नाम दिया जा सकता है।

■ **पुरस्कार की नीति** के तहत देशी रियासतों को समझा बुझाकर विलय के लिए राजी करने का कार्य किया गया। इस नीति के तहत उन्होंने निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई-

- **स्टैंड स्टिल एग्रीमेंट:** स्टैंड स्टिल एग्रीमेंट से तात्पर्य है जो संबंध पहले भारतीय राज्यों के ब्रिटिश क्राउन के साथ बने हुए थे, वही संबंध भारतीय राज्यों के नव-स्थापित डोमिनियन के साथ बने रहेंगे। पटेल ने इन शासकों से अपील की कि आपको अपने सीमित अधिकार ही त्यागने होंगे। ये अधिकार हैं- प्रतिरक्षा, विदेश और संचार, आपके बाकी अधिकार अक्षुण्ण रहेंगे। फिर ये वे अधिकार हैं जिनका उपयोग आपने कभी नहीं किया है। इससे पूर्व इन अधिकारों का उपयोग ब्रिटिश के द्वारा किया जाता रहा था।
- **इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन:** इसके तहत संबंधित राज्य के शासक के द्वारा भारत सरकार को अपना भू-भाग सुपुर्द किया जाना था तथा उस भू-भाग पर भारत सरकार की संपूर्ण सत्ता को स्वीकृति देनी थी। इन शासकों के द्वारा न केवल अपनी तरफ से, बल्कि अपने भावी उत्तराधिकारियों की तरफ से भी भारत सरकार को संबंधित क्षेत्र पर पूर्ण प्रभुसत्ता की गारंटी दी जानी थी। बदले में, भारत सरकार के द्वारा उन्हें एक खास रकम प्रिवी पर्स के रूप में दी जानी थी। उन्हें अपनी निजी संपत्ति (पैसा, रूपया, आभूषण आदि) तथा अपनी उपाधियों को बनाए रखने का भी अधिकार दिया गया। उन्हें अपने उत्तराधिकारी को तय करने की भी पूरी छूट थी।

■ **छड़ी अथवा दण्ड की नीति :** दूसरी तरफ वल्लभ भाई पटेल ने इन शासकों पर दबाव भी बनाये रखने का प्रयास किया अर्थात् उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि अगर भारतीय स्वतंत्रता तक आपने अपने राज्यों का विलय नहीं किया, तो स्वयं आपको अपनी जनता के आंदोलन का सामना करना होगा तथा फिर भारत सरकार की दृष्टि भी आपके प्रति कठोर हो जायेगी।

■ **भारतीय रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया में मुख्य प्रशासनिक मुद्दे एवं सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ :-**

प्रशासनिक समस्याएँ :

1. विलय होने वाले राज्य में शासक की स्थिति क्या होगी?
2. संबंधित राज्य के सैनिकों का क्या होगा?
3. संविधान सभा में देशी रियासतों का प्रतिनिधित्व किस प्रकार होगा?
4. देशी रियासतों का भौगोलिक आकार पृथक्-पृथक् था तथा वे विकास के विभिन्न स्तर पर थीं। जहाँ इन देशी रियासतों में हैदराबाद जैसी विशाल रियासत थी, वहीं 70 रियासतों का क्षेत्रफल 1 वर्ग मील से अधिक नहीं था।
5. कुछ देशी रियासतों में पिछड़े क्षेत्र को आरक्षण मिलता था।

अत: मुद्दा यह था कि उसकी भारतीय यूनियन में स्थिति क्या होगी? उदाहरण के लिए, हैदराबाद में तेलंगाना क्षेत्र।

सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ :

- उस समय सम्पूर्ण भारत साम्प्रदायिक विभाजन से ग्रस्त रहा था, देशी रियासतें इसका अपवाद नहीं थीं। शासक भी साम्प्रदायिक आधार पर बंटे हुए थे। उदाहरण के लिए, भोपाल एवं हैदराबाद मुस्लिम समूह का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और उनका झुकाव पाकिस्तान की ओर था, वहीं बीकानेर तथा पटियाला का झुकाव भारत की ओर था।
- देशी रियासतों की प्रजा भी विभाजित थी। कहीं शासक मुस्लिम था, तो बहुसंख्यक प्रजा हिन्दू, जैसे- जूनागढ़, हैदराबाद। कहीं शासक हिन्दू था, तो बहुसंख्यक प्रजा मुस्लिम, जैसे- कश्मीर।

अभ्यास प्रश्न:- भारतीय रियासतों के एकीकरण की प्रक्रियाओं में मुख्य प्रशासनिक मुद्दों एवं सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं का आकलन कीजिए (150 शब्द, UPSC-2021)

देशी रियासतों का एकीकरण

- अधिकांश देशी रियासतों ने 15 अगस्त, 1947 तक भारत के साथ अपना विलय स्वीकार कर लिया। आरंभ में हैदराबाद, जूनागढ़, त्रावणकोर, भोपाल और कश्मीर ने इस विलय का विरोध किया। किंतु स्वतंत्रता से पूर्व भोपाल और त्रावणकोर ने भी विलय स्वीकार कर लिया। अब केवल तीन रियासतें शेष रह गईं- कश्मीर, जूनागढ़ एवं हैदराबाद।

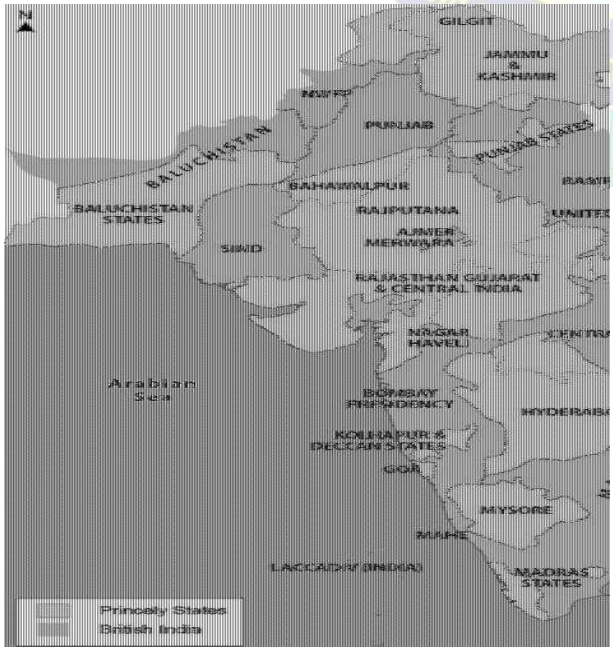

- **कश्मीर :-** आरंभ में कश्मीर के शासक हरिसिंह ने विलय के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था, किंतु जब 22 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तानी सेना के सहयोग से अफगान मुजाहिद्दीनों ने कश्मीर पर आक्रमण किया, तो 26 अक्टूबर, 1947 को राजा हरिसिंह ने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया।
- फिर कश्मीर मुद्दे पर भारत और पाकिस्तान के बीच एक युद्ध छिड़ गया, जिसमें भारत की सेना ने जल्द ही घाटी से कबीलाई आक्रमणकारियों को बाहर खदेड़कर कश्मीर के 2/3 भाग पर नियंत्रण कर लिया, लेकिन भारत इस मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गया।
- कश्मीर समस्या के प्रति संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों, खासकर अमेरिका तथा ब्रिटेन, का रुख शत्रुतापूर्ण रहा। अत: उन्होंने भारत की दावेदारी को नज़रअंदाज़ कर कश्मीर समस्या को 'भारत-पाकिस्तान विवाद' का रूप दे दिया। विवश होकर भारत को 31 दिसंबर, 1948 को युद्ध विराम के प्रस्ताव को स्वीकारना पड़ा। अत: कश्मीर का 2/3 क्षेत्र भारत के कब्ज़े में तथा 1/3 क्षेत्र पाकिस्तान के कब्ज़े में रह गया।

- **जूनागढ़-** यहाँ का नवाब मुस्लिम तथा बहुसंख्यक आबादी हिंदू थी। नवाब जूनागढ़ को पाकिस्तान में विलय करना चाहता था, लेकिन यहाँ जन-आंदोलन शुरू होने के कारण वह पाकिस्तान भाग गया। तत्पश्चात् उसके प्रधानमंत्री शाहनवाज भुट्टो ने फरवरी, 1948 में एक जनमत संग्रह करवाया, जिसके आधार पर जूनागढ़ का विलय भारत के साथ हो गया।
- **हैदराबाद-** यहाँ के नवाब ने भारत सरकार के साथ एक वर्ष के लिये 'यथास्थिति समझौता' किया तथा इस काल में उसने प्रजातांत्रिक संस्थाओं का विकास करने का वादा किया। किंतु, दूसरी तरफ उसने अपने रज़ाकार सैनिकों के माध्यम से किसानों पर दमन चक्र जारी रखा। अंत में, 13 सितंबर, 1948 को भारत सरकार ने हैदराबाद के विरुद्ध पुलिस कार्रवाई का निर्णय लिया तथा 'ऑपरेशन पोलो' के तहत हैदराबाद का भारत में विलय कर लिया।
- **पांडिचेरी-** फ्राँस ने इसे भारत को शांतिपूर्वक 1954 में सौंप दिया।
- **गोवा-** गोवा पर पुर्तगीजों का कब्जा था तथा पुर्तगीज गोवा छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। चूँकि पुर्तगाल, अमेरिका तथा ब्रिटेन के साथ शीत युद्ध का सहयोगी रहा था, इसलिए उनकी ओर से भी उसे प्रोत्साहन दिया जा रहा था। अंत में, 1961 में भारत सरकार ने अपनी सेना भेज दी तथा गोवा का भारत में विलय कर लिया गया।

■ **वल्लभभाई पटेल की उपलब्धियों का मूल्यांकन :-**

• पटेल को 'बिस्मार्क ऑफ इण्डिया' कहा जाता है परन्तु अगर हम गौर से देखते हैं तो वल्लभभाई पटेल की उपलब्धियाँ बिस्मार्क से कहीं अधिक हैं। इसे निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं-

1. बिस्मार्क यूरोप में सबसे मजबूत एवं संगठित सेना का प्रतिनिधित्व कर रहा था, जबकि भारत की सेना असंगठित एवं विभाजित थी।
2. बिस्मार्क को यह कार्य पूरा करने में लगभग 15 वर्ष लगे, परन्तु वल्लभभाई पटेल ने इसे लगभग 15 महीनों में पूरा कर लिया।
3. सबसे बढ़कर, भारत की यह क्रांति एक रक्तहीन क्रांति के रूप में सिद्ध हुई, यह कार्य अहिंसक रूप में पूरा किया गया। सोवियत रूस के राष्ट्रपति ख्रुश्चेव ने भी आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा था कि आप भारतीय वास्तव में अनोखे हैं, आपने भारतीय शासकों को समाप्त किये बिना भारतीय रियासतों को समाप्त कर दिया।

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

एक प्रजातांत्रिक संविधान के माध्यम से एक सामंती एवं औपनिवेशिक समाज को आधुनिक राष्ट्र के रूप में संगठित करना

■ **पृष्ठभूमि :-**

- 15 अगस्त, 1947 को राजनीतिक आजादी प्राप्त हो गई थी, परंतु एक प्रजातांत्रिक संविधान के माध्यम से हमें आर्थिक और सामाजिक आजादी भी सुनिश्चित करनी थी। भारतीय संविधान उस आर्थिक एवं सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने का साधन था। इसलिए जहाँ अन्य देशों के द्वारा एक स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता, वहीं भारत में दो स्वतंत्रता दिवस मनाए जाने की परंपरा है- 15 अगस्त, 1947 तथा 26 जनवरी, 1950।
- कैबिनेट मिशन योजना ने ही एक संविधान सभा का प्रावधान लाया था और 9 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक आरंभ हो गई थी। परंतु विभाजन के कारण संपूर्ण प्रक्रिया रुक गई। लीग के सदस्य उससे बाहर हो गए तथा फिर संविधान सभा ने अपनी बैठक आरंभ की। 15 अगस्त की मध्य रात्रि में नेहरू के अभिभाषण के पश्चात् दूसरे दिन इसकी बैठक आरंभ हुई।
- अगर व्यावहारिक रूप में देखा जाए, तो भारत का संविधान संभवत: तृतीय विश्व का पहला प्रजातांत्रिक संविधान था। अत: भारत के संविधान निर्माताओं के समक्ष एक बड़ी चुनौती थी- एक प्रजातांत्रिक संविधान का गठन और इनके सामने प्रारूप पश्चिमी देशों के सविधानों का था।

1. **वैश्विक संविधानों का प्रभाव:-**

- विश्व का पहला संविधान ब्रिटिश संविधान था और ब्रिटेन का भारत से गहरा संबंध रहा था। इसलिए ब्रिटिश संसदीय परंपरा को अपनाया जाना बहुत ही स्वाभाविक था। किंतु संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह भारत का भी आकार लगभग महाद्वीपीय था, साथ ही इसका चरित्र भी विविधतामूलक था। इसलिए इसने अमेरिकी संविधान से भी बहुत कुछ लिया। यथा- स्वतंत्र न्यायपालिका, मौलिक अधिकार, निर्वाचित राष्ट्रपति का पद आदि। परंतु भारत के संविधान-निर्माता भारतीय संविधान को सबसे बेहतर बनाना चाहते थे और ब्रिटिश एवं अमेरिकी संविधान की कुछ मूलभूत खामियों को भी समाप्त करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अन्य संविधानों से भी कुछ-न-कुछ ग्रहण किया। यथा- आयरलैंड से नीति निर्देशक तत्व, जर्मनी के वाइमर गणतंत्र से आपातकाल का प्रावधान, सोवियत रूस के संविधान से मौलिक कर्त्तव्य आदि।

2. **राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव :-** स्वतंत्र भारत के संविधान को एक महत्वपूर्ण प्रेरणा राष्ट्रीय आंदोलन से मिली। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान कांग्रेस ने 'प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं' एवं 'स्वराज्य अथवा स्वशासन' जैसे नारे का उपयोग कर संविधानवाद को प्रोत्साहन दिया। फिर गांधी ने 'सत्याग्रह' एवं 'अहिंसा' की विधि अपनाकर संवैधानिकता के पक्ष को मजबूत किया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में हिंसा की छिटपुट घटनाएं होती रही थीं, परंतु मुख्य धारा में अहिंसक आंदोलन ही प्रभावी रहा था। साथ ही, राष्ट्रीय आंदोलन के मध्य भी नेताओं एवं बुद्धिजीवियों के बीच वाद-विवाद के माध्यम से आपसी विवाद को सुलझाया जाता था। डॉ० अंबेडकर इसे संवैधानिक नैतिकता (Constitutional Morality) की संज्ञा देते हैं। इसके अतिरिक्त, कांग्रेस तथा विभिन्न दलों के द्वारा समय-समय पर संवैधानिक मांगें रखी जातीं। यथा- 1931 के कराची अधिवेशन में मौलिक अधिकार का प्रस्ताव। इससे भी संवैधानिकता का भाव मजबूत हुआ।

3. **ब्रिटिश सरकार के द्वारा समय-समय पर लाए गए संवैधानिक कानून, विशेषकर 1935 के भारत शासन अधिनियम का प्रभाव :-** 1892 के अधिनियम से लेकर 1935 के भारत सरकार अधिनियम तक औपनिवेशिक सरकार के द्वारा समय-समय पर अनेक संवैधानिक सुधार अधिनियम लाए गए थे। इसके साथ ही स्वयं भारत के राजनीतिक दलों के द्वारा नेहरू रिपोर्ट के रूप में अपना संविधान प्रस्तुत किया गया था। इन सबका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा। सबसे गहरा प्रभाव 1935 के भारत सरकार अधिनियम का देखा जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि अगर हमारे संविधान निर्माताओं के समक्ष 1935 का भारत सरकार अधिनियम नहीं होता, तो फिर लगभग 3 वर्षों में भारत के संविधान का निर्माण संभव नहीं होता।

4. **आर्थिक एवं सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने का लक्ष्य :-** हमने पश्चिमी संविधान की नकल पर व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व देने का प्रयास किया, परंतु हम आर्थिक-सामाजिक पिछड़ेपन के शिकार थे। अत: इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें व्यक्ति की स्वतंत्रता के लक्ष्य को थोड़ा दरकिनार करना पड़ा। यही वजह है कि मौलिक अधिकार के समानांतर नीति निर्देशक तत्व का महत्व बढ़ता चला गया।

5. **भारत के विभाजन का प्रभाव :-** बहुत कम लोगों का ध्यान इस बात पर जाता है कि भारतीय संविधान को आकार देने में विभाजन, हिंदू-मुस्लिम दंगे, रक्तपात एवं हिंसा की बड़ी भूमिका रही थी। बताया जाता है कि विभाजन से पहले संविधान सभा ने राज्य को अधिक शक्ति प्रदान करने की बात की थी तथा निर्वाचित गवर्नर का प्रावधान लाया था। परंतु विभाजन ने सबसे अधिक संघीय ढाँचे को प्रभावित किया और राज्य की स्थिति कमजोर कर दी। इसके अतिरिक्त, आपातकाल का प्रावधान लाया गया और मौलिक अधिकार को भी सीमित कर दिया गया।

■ **भारतीय संविधान के विशिष्ट लक्षण :-**

1. हमारी संविधान सभा में लगभग 300 योग्य एवं प्रबुद्ध प्रतिनिधि एक साथ बैठे और उन्होंने इस संविधान पर अपनी छाप छोड़ी। शायद ही किसी दूसरी संविधान सभा में इतने योग्य एवं प्रबुद्ध प्रतिनिधि एक साथ बैठे हों।

2. हमारी संविधान सभा विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करती थी। इसमें दक्षिणपंथी, वामपंथी, धर्मगुरु, धर्मनिरपेक्ष, कुलीन एवं जनसामान्य सभी शामिल थे। इसलिए इसने अपेक्षाकृत एक वृहद् राष्ट्रीय दृष्टिकोण को व्यक्त किया।

3. भारतीय संविधान सभा ने खुली बहस को प्राथमिकता दी और सामान्य जनता की राय के लिए भी दरवाजा खोल दिया। किसी तृतीय विश्व के देशों में इतना तक कि अधिकांश पश्चिमी देशों में भी यह खुला वातावरण नहीं मिल सका था। इंडोनेशिया की सरकार ने एक अन्य संविधान के निर्माण के लिए इस तरह का वातावरण देने का प्रयास किया, परंतु वह विफल हो गया।

4. संविधान सभा में जिस बात पर सहमति नहीं हुई संविधान सभा ने उसे दबाने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उसके निर्णय को भावी पीढ़ी पर छोड़ दिया। उदाहरण के लिए, नीति निर्देशक तत्व, यूनिफॉर्म सिविल कोड आदि।

5. **पश्चिमी संविधान का अंधानुकरण नहीं-** भारतीय संविधान पर एक आरोप यह है कि इसमें पश्चिमी मॉडल का अंधानुकरण किया गया है। किसी विद्वान ने तो यहाँ तक कहा है कि हम वीणा अथवा सितार की धुन सुनना चाहते थे, परंतु मिली अंग्रेजी बैंड की धुन।

   परन्तु अगर हम सूक्ष्म परीक्षण करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि हमने पश्चिम का अंधानुकरण नहीं किया, बल्कि पश्चिम से ली गई प्रत्येक अवधारणा; जैसे- स्वतंत्रता, समानता एवं धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या भारतीय परिस्थितियों के अनूकुल की है।

6. **भारतीय संविधान तृतीय प्रजातांत्रिक क्रांति का माध्यम:-** सुनील खिलनानी नामक विद्वान ने इसे 'तृतीय प्रजातांत्रिक क्रांति' का नाम दिया। उन्होंने प्रथम प्रजातांत्रिक क्रांति अमेरिकी क्रांति को कहा है तथा उसे प्रजातंत्र के प्रसार का प्रथम चरण माना है। दूसरी प्रजातांत्रिक क्रांति फ्रांस की क्रांति को कहा है तथा उसे प्रजातंत्र के प्रसार का दूसरा चरण माना है। फिर भारत की प्रजातांत्रिक क्रांति को तीसरी क्रांति इसलिए कहा क्योंकि भारत में प्रजातांत्रिक संविधान के निर्माण के पश्चात् प्रजातंत्र का प्रसार एशियाई-अफ्रीकी देशों में भी हुआ।

   वहीं दूसरी तरफ, योगेन्द्र यादव के अनुसार भारतीय संविधान के निर्माण से प्रजातंत्र की अवधारणा का प्रजातांत्रीकरण हुआ अर्थात् भारत की सफलता ने तृतीय विश्व के देशों को भी प्रजातंत्र की ओर आकर्षित किया। इससे पहले यह धारणा थी कि प्रजातंत्र शिक्षित एवं सम्पन्न देशों के लिए अर्थ रखता है, परन्तु भारत ने इस धारणा को अस्वीकार कर दिया।

■ **भारतीय संविधान की सीमाएँ :-**

1. कांग्रेस पार्टी के प्रतिनिधियों की संख्या देखते हुए इस पर उसका कुछ ज्यादा ही प्रभाव रहा (वर्तमान में यही कारक मोदी-शाह सरकार के असंतोष का कारण है)।

2. यह भी एक आश्चर्य का विषय है कि सार्वत्रिक वयस्क मताधिकार को सुनिश्चित करने वाली भारत की संविधान सभा स्वयं सीमित मताधिकार पर आधारित विधान मंडलों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित हुई थी।

■ **संविधान का क्रियान्वयन तथा चुनौतियाँ :-**

- किसी भी संविधान की उत्कृष्टता का आधार केवल विधियों का संग्रह तैयार करना मात्र नहीं होता, बल्कि विधियों का व्यावहारिक क्रियान्वयन होता है। अत: जब भारत के संविधान को समकालीन राजनीति का सामना करना पड़ा, तब इसकी वास्तविक परीक्षा आरंभ हुई।
- **मौलिक अधिकार बनाम नीति निदेशक तत्व**- संविधान निर्माताओं ने भारत के उपलब्ध साधनों को देखते हुए प्राथमिकता मौलिक अधिकारों को दी थी। वहीं भारत की तात्कालिक जरूरत थी सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करना। लेकिन मौलिक अधिकार के समानांतर नीति निदेशक तत्व का महत्व बढ़ता चला गया। पहले सरकार के द्वारा ही नीति निदेशक तत्व के क्रियान्वयन के नाम पर मौलिक अधिकार के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप किया जाता रहा था। आरम्भ में, सुप्रीम कोर्ट के द्वारा इसका विरोध किया गया, फिर न्यायपालिका ने अपना रुख परिवर्तित कर लिया।
- **मंत्रिपरिषद् बनाम राष्ट्रपति** - हमारे संविधान निर्माताओं ने मंत्रिपरिषद् तथा राष्ट्रपति के संबंध को बहुत स्पष्ट नहीं किया था। 'अनुच्छेद-74' में बस इतना था कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह से काम करेगा, परंतु यह स्पष्ट नहीं था कि राष्ट्रपति उसे मानने के लिए बाध्य होगा अथवा नहीं। आगे भी इस पर अस्पष्टता बनी रही। आगे 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से श्रीमती इंदिरा गांधी यह प्रावधान जुड़वाने में कामयाब रहीं कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् का परामर्श मानने के लिए बाध्य होगा।
- **विधानमण्डल बनाम न्यायपालिका**- यह बड़ा ही चुनौतीपूर्ण मुद्दा बनकर उभरा। जहाँ ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा बनाई गई विधि को न्यायपालिका में चुनौती नहीं दी जा सकती थी, वहीं भारत में संविधान के रक्षक के रूप में सुप्रीम कोर्ट विद्यमान था। इसलिए आगामी तीन दशकों तक संसद एवं न्यायपालिका के बीच खुली टकराहट हुई। टकराहट का एक मुद्दा था मौलिक अधिकार का मसला। पहले सुप्रीम कोर्ट का मानना था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं ला सकती (गोलकनाथ मुकद्दमा, 1967)। आगे केशवानन्द भारती मुकद्दमे में सुप्रीम कोर्ट ने संसद द्वारा मौलिक अधिकार में संशोधन लाने की शक्ति को स्वीकार कर लिया। एक तरफ जहाँ संसद, न्यायपालिका के न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को काटना चाहती थी, वहीं सुप्रीम कोर्ट संसद की संवैधानिक संशोधन की शक्ति को सीमित करना चाहता था।

प्रश्न:- क्या भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने एक परिसंघीय संविधान निर्धारित कर दिया था। चर्चा कीजिए।

उत्तर:- ब्रिटिश पक्षधर विद्वान यह निर्धारित करने का प्रयास करते हैं कि 1935 के भारत शासन अधिनियम के रूप में ब्रिटिश ने भारत को एक ऐसा संविधान दिया था जो भारत में अधिकांश वर्गों को संतुष्ट कर सके। इसके माध्यम से ब्रिटिश भारत एवं देशी रियासत दोनों को एक-दूसरे से जोड़ने तथा संघ एवं राज्यों के बीच संबंधों को पुनर्निधारित करने का प्रयास किया गया था, परंतु राष्ट्रवादी जवाब यह है कि ब्रिटिश कंजरवेटिव पार्टी के दबाव में ब्रिटिश संसद ने भारत की संवैधानिक प्रगति में अवरोध डालने के लिए संघ का प्रावधान लाया था। अब अगर हम दोनों विचारों का परीक्षण करते हैं, तो दूसरा विचार अधिक विश्वसनीय लगता है।

1935 के अधिनियम के द्वारा स्थापित परिसंघीय व्यवस्था की निम्नलिखित सीमाएँ बनी रही थीं: -

1. केन्द्रीय विधानमंडल के दोनों सदनों में 30-40 प्रतिशत सीटें देशी रियासतों को दिया जाना, फिर इन पदों पर नियुक्ति निर्वाचन के माध्यम से नहीं, बल्कि मनोनयन के माध्यम से होनी थी।
2. इसका एक महत्त्वपूर्ण दोष था केन्द्रीय सरकार के स्तर पर उत्तरदायी शासन की अनुपस्थिति। इसने संपूर्ण परिसंघीय व्यवस्था को एक अप्रजातांत्रिक पद्धति के अंतर्गत ला दिया।
3. केन्द्रीय स्तर पर वायसराय को अत्यधिक विवेकाधीन शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह किसी भी सरकार को अपने हाथों में ले सकता था। फिर प्राँतों में भी गवर्नर को अनेक विवेकाधीन शक्तियाँ प्राप्त थीं, साथ ही वह निर्वाचित सरकार को भी बर्खास्त कर सकता था।
4. अंत में, हम ऐसा कह सकते हैं कि यह परिसंघीय व्यवस्था भी महज कागज पर ही रह गई क्योंकि इसके लिए कम से कम 50% देशी राज्यों की स्वीकृति अनिवार्य थी, जो नहीं मिली।

इसलिए ऐसा कहा जा सकता है 1935 के भारत शासन अधिनियम के द्वारा एक छद्म व्यवस्था का प्रारूप प्रस्तुत किया गया था।

प्रश्न:- स्वतंत्र भारत के लिए संविधान का मसौदा केवल तीन साल में तैयार करने के ऐतिहासिक कार्य को पूर्ण करना संविधान सभा के लिए कठिन होता, यदि उनके पास भारत सरकार अधिनियम, 1935 से प्राप्त अनुभव

नहीं होता। चर्चा कीजिए।

(प्रश्न का अर्थ-अन्वेषण:- *यह प्रश्न स्तरीय है। अगर हम 1935 के संविधान तथा भारत शासन अधिनियम के बीच संबंधों की व्याख्या करते हैं तो इसके दो पहलू सामने आते हैं। प्रथम, 1935 के भारत शासन अधिनियम से हमारे संविधान ने बहुत कुछ ग्रहण किया है परंतु दूसरे, 1935 के भारत शासन अधिनियम का उद्देश्य (एक का साम्राज्यवादी उद्देश्य था तो दूसरे का उद्देश्य था राष्ट्र निर्माण) हमारे संविधान के उद्देश्य से पृथक था। इसलिए हमारे संविधान के अनेक उपबंधों की 1935 के भारत शासन अधिनियम से पृथकता बनी रही तथा जो उपबंध भारत शासन से लिए भी गए हैं उनमें भारत की राष्ट्रवादी जरूरत के अनुकूल बहुत हद तक परिमार्जन एवं परिशोधन लाया गया है। किंतु जैसाकि इस प्रश्न की मांग है प्रश्न के साथ सहमति जताना ही अपेक्षाकृत आसान होगा क्योंकि अन्य देशों के संवैधानिक अनुभव को देखते हुए भारत शासन अधिनियम, 1935 के महत्व को नकारना कठिन है। इस प्रश्न की प्रेरणा शेखर बंधोपाध्याय की बहुचर्चित पुस्तक 'प्लासी से विभाजन तक' से मिली है। बंधोपाध्याय ने 2015 में अपनी पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण में 'After independence and partition' नाम से एक नया अध्याय जोड़ा है।)*

मॉडल उत्तर:- भारतीय संविधान, संविधान-निर्माण की दिशा में एक बड़ा प्रयोग था। यह तृतीय विश्व का प्रथम एवं सफल संविधान है। यह सही है कि भारतीय संविधान सभा में विशेषज्ञों का एक बड़ा समूह कार्यरत था तथा भारतीय संविधान निर्माताओं ने विश्व भर के संविधानों से प्रेरणा लेकर एक चुस्त एवं सटीक संविधान निर्मित करने का प्रयास किया। फिर, यह भी सही है कि हमारे संविधान-निर्माताओं ने 1935 के संविधान से सभी प्रावधान ज्यों-के-त्यों नहीं लिए क्योंकि 1935 का संविधान ब्रिटेन की साम्राज्यवादी जरूरत के अनुकूल निर्मित हुआ था। स्वाभाविक रूप में भारत की राष्ट्रवादी जरूरत के अनुकूल हमारे संविधान निर्माताओं ने उन प्रावधानों में फेरबदल किया। फिर भी, 1935 के भारत शासन अधिनियम ने स्वतंत्र भारत के संविधान के आरम्भिक खाके के रूप में कार्य किया तथा हमारे संविधान-निर्माताओं के काम को अपेक्षाकृत आसान बना दिया।

कहा जाता है कि स्वतंत्र भारत के संविधान में लगभग 250 वाक्यांश (Clauses) सीधे तौर पर भारत शासन अधिनियम से लिए गए। उसी प्रकार, प्रान्तीय स्वायत्तता का प्रथम प्रयोग 1935 के भारत शासन अधिनियम में ही हुआ था। इसने संघीय व्यवस्था की भी रूपरेखा प्रस्तुत की, यद्यपि इसका क्रियान्वयन नहीं हो सका। उसी प्रकार, वर्तमान संविधान में अनुच्छेद 356 (प्रांत में राष्ट्रपति शासन) का प्रावधान 1935 के अधिनियम की 93वीं धारा से प्रेरित है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान सर्वोच्च न्यायालय की आधारभूत संरचना भी कहीं-न-कहीं 1935 के अधिनियम में उल्लिखित संघीय न्यायालय से प्रभावित रही है। साथ ही, संविधान सभा में अनेक ऐसे लोग बैठे हुए थे जिन्हें 1935 के संविधान के अंतर्गत कार्य करने का अनुभव था। अत: इस अनुभव का लाभ भी वर्तमान संविधान को मिला होगा।

अंत में, अगर हम अपने पड़ोसी राष्ट्रों के संवैधानिक अनुभव को साझा करते हैं तो बात और भी स्पष्ट हो जाती है। नेपाल सात वर्षों के अथक प्रयास के बावजूद भी एक बहुमान्य संविधान निर्मित नहीं कर सका, जबकि श्रीलंका चौथी बार संविधान निर्माण की दिशा में प्रयोग कर रहा है। संभवत: अगर उन देशों के समक्ष भी कोई पूर्व संविधान का खाका होता तो शायद स्थिति अलग हो सकती थी। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार 1935 के भारत शासन अधिनियम ने स्वतंत्र भारत में संविधान निर्माण कार्यक्रम में अपना योगदान दिया।

भारत के विशाल भौगोलिक आकार एवं सांस्कृतिक विविधता के बावजूद एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण जो विविधता में एकता का उदाहरण बना

- राष्ट्र निर्माण का आरंभिक मॉडल पश्चिमी यूरोप में तैयार हुआ था, परन्तु पश्चिमी यूरोप के देशों का आकार अपेक्षाकृत छोटा था और सांस्कृतिक विविधताएँ भी कम थीं, वहीं भारत का विशालकाय भौगोलिक आकार था और सांस्कृतिक विविधताएँ ज्यादा थीं। इसलिए जॉन स्ट्रैची से लेकर जॉन रूडयार्ड किपलिंग तक विभिन्न ब्रिटिश विद्वानों ने भारत के राष्ट्र बनने की क्षमता के विषय में अविश्वास प्रकट किया था। इसलिए भारत ने राष्ट्र निर्माण का अपना एक वैकल्पिक मॉडल विकसित किया।

■ **राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा का मुद्दा :**

- राजभाषा से तात्पर्य है सरकार की भाषा, जिसे काम-काज की भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा राष्ट्रभाषा का अर्थ है जिसे राष्ट्र की बड़ी जनसंख्या प्रयोग करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया था, परन्तु गैर-हिन्दी प्रदेश के लोगों के विरोध को देखते हुए संविधान सभा ने समझौतावादी रूख अपनाते हुए सर्वप्रथम 1950 ई. में हिन्दी के साथ 15 वर्षों के लिए अंग्रेजी को सह-राजभाषा और फिर आगे 1963 ई. में अनिश्चित काल के लिए अंग्रेजी को सह-राजभाषा के रूप में स्थापित कर दिया। उसी प्रकार, संविधान की 8वीं अनुसूची में आरंभ में 14 भाषाओं को स्थान दिया गया था जो वर्तमान में बढ़कर 22 हो गई हैं। इस प्रकार, व्यवहार में भारत 22 भाषाओं का राष्ट्र बना।

■ **भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन:**

- विभाजन से उत्पन्न भय के कारण कांग्रेस की सरकार ने अपने पुराने वायदे से पीछे हटते हुए भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन की मांग को अस्वीकार कर दिया। इसी क्रम में धर समिति और जे.वी.पी. समिति दोनों का गठन हुआ था तथा दोनों ने इसे अस्वीकृति प्रदान की थी। परंतु आंध्र प्रदेश में जन आंदोलन की स्थिति को देखते हुए 1953 में सरकार ने आंध्र प्रदेश को भाषायी आधार पर गठित पहला प्रांत बनाया तथा 1956 में प्रांतीय पुनर्गठन आयोग की अनुशंसा पर 14 प्रांत तथा 6 केंद्रशासित प्रदेशों का गठन किया गया। आगे 1960 में बम्बई को भी भाषायी आधार पर महाराष्ट्र और गुजरात में विभाजित किया गया। यह प्रक्रिया 1966 में पूरी हुई, जब पंजाबी भाषी पंजाब और हिंदी भाषी हरियाणा को एक-दूसरे से पृथक किया गया।

■ **यूनिफॉर्म सिविल कोड के लक्ष्य को टालना :**

- भारत के विविधतामूलक स्वरूप को देखते हुए यूनिफॉर्म सिविल कोड को स्थापित करने का दायित्व भावी पीढ़ी के ऊपर डाल दिया गया।

कमजोर वर्ग- अल्पसंख्यक समुदाय, महिलाएँ, दलित एवं पिछड़ी जातियों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना

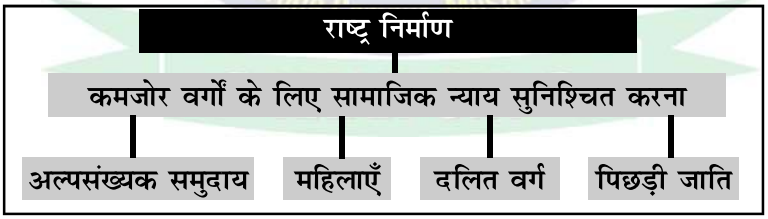

- हमारी संविधान सभा के समक्ष एक बड़ा दायित्व था सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना। इस क्रम में अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति, पिछड़ी जातियां एवं महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की जानी थी। फिर अंत में, अल्पसंख्यक समूह की सुरक्षा की भी बात की गई।

■ **धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को संरक्षण:-**

- धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देने के लिए मौलिक अधिकार में प्रावधान लाया गया। मौलिक अधिकार में अनुच्छेद 25 से 28 के बीच धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षण की व्यवस्था है, वहीं अनुच्छेद 29 और 30 में भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा दी गई है। एक राष्ट्र के रूप में यह भारत की महान उपलब्धि रही।

■ **महिलाओं को सुरक्षा:-**

- स्वतंत्रता के पश्चात् महिला उत्थान कार्यक्रम स्वतंत्र भारत सरकार की एक प्राथमिकता थी। इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू था-विवाह, तलाक, उत्तराधिकार से संबंधित नियमों में स्पष्टता। महिलाओं की स्थिति को ऊँचा उठाने के लिये 1951 ई. में 'हिंदू कोड बिल' का प्रस्ताव लाया गया, परन्तु समाज के अनेक हिंदू सांप्रदायिक संगठनों द्वारा भारी विरोध के कारण नेहरू ने इस बिल को तात्कालिक

रूप से लागू करने पर रोक लगा दी तथा बाद में सरकार ने चार अलग-अलग कानूनों, जैसे- हिंदू विवाह अधि नियम, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, हिंदू नाबालिग एवं अभिभावक अधिनियम और गोद लेने तथा खर्चा देने संबंध ी अधिनियम पारित किया।

■ **दलित वर्ग/अनुसूचित जाति :-**

- दलित वर्ग को अनुसूचित जाति का दर्जा देकर संविधान में विशेष आरक्षण दिया गया। उनके विकास के लिए केन्द्रीय विधानमंडल एवं प्रांतीय विधान मंडलों में सीटों को आरक्षित किया गया, फिर सरकारी सेवा में भी उनके लिए सीटें आरक्षित की गईं। आरंभ में ये आरक्षण 10 वर्षों के लिए किए गए थे, किन्तु आगे इन्हें अनिश्चित काल के लिए कर दिया गया।

■ **अनुसूचित जनजाति :-**

- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती थी जनजातियों के विकास के लिए काम करना। अत: संविधान के अनुच्छेद-46 में जनजातीय लोगों के आर्थिक-सामाजिक विकास के प्रति प्रतिबद्धता दर्शायी गयी तथा उनके लिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था की गयी। फिर, जनजातीय विकास के लिए राष्ट्रपति को विशेष शक्तियाँ दी गईं तथा जनजातीय जनसंख्या की बहुलता वाले राज्य में राज्यपाल को भी विशेष अधिकार दिया गया।

■ **पिछड़ी जाति :-**

- मौलिक संविधान में पिछड़ी जातियों के लिए कोई प्रावधान नहीं लाया गया था, बल्कि जाति पहचान को अस्वीकार करने का प्रयास किया गया था। फिर, अन्य पिछड़ी जातियों के मुद्दे पर विचार करने के लिए 1953 में गठित काका कालेलकर समिति द्वारा इन जातियों को सरकारी सेवा में आरक्षण की अनुशंसा की गई, परंतु इसका क्रियान्वयन नहीं हुआ। फिर, अंत में 1990 में मंडल आयोग की रिपोर्ट के आधार पर अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान लाया गया।

प्रश्न:- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने विशाल भौगोलिक आकार एवं सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए यूरोपीय मॉडल से पृथक् राष्ट्र निर्माण का मॉडल कैसे अपनाया? स्पष्ट कीजिये।

*(**प्रश्न विश्लेषण:** यह प्रश्न अपने स्वरूप में Hypothetical है। Key Words हैं- 'स्वतंत्रता', 'पश्चात्', 'विशाल भौगोलिक', 'सांस्कृतिक विविधता', 'यूरोपीय मॉडल', 'पृथक्', 'राष्ट्र', 'निर्माण', 'स्पष्ट कीजिये'।)*

उत्तर: राष्ट्र निर्माण का आरंभिक मॉडल पश्चिमी यूरोप में तैयार हुआ था, परंतु पश्चिमी यूरोप के राष्ट्र का भौगोलिक आकार छोटा था और उसमें सांस्कृतिक विविधता बहुत कम थी। परंतु, भारत एक महाद्वीपीय आकार वाला देश था। सबसे बढ़कर यहाँ सांस्कृतिक विविधता थी, इसलिये इसके राष्ट्र बनने की संभावना पर हमेशा प्रश्न लगाया जाता था। परंतु, भारत ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्र निर्माण का एक पृथक् मॉडल विकसित किया, जो पश्चिमी मॉडल से अलग था। इसके तहत निम्नलिखित कदम उठाए गए-

- **विषम संघवाद को अपनाना:** भारत में क्षेत्रीय दबाव को देखते हुए अमेरिकी संघीय मॉडल से पृथक् हटकर कनाडाई विषमांगी संघ के मॉडल को अपनाया गया, अर्थात् अमेरिकी मॉडल में सभी राज्यों की समानता के सिद्धांत को स्वीकार किया गया, किंतु भारत में कुछ राज्यों की विशिष्ट स्थिति को भी स्वीकार किया गया। इसके उदाहरण अनुच्छेद 370 (जो अब रद्द हो चुका है।) तथा अनुच्छेद 371 हैं।

- **राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के मुद्दे पर व्यावहारिक दृष्टिकोण:** जहाँ पश्चिमी यूरोप के देशों ने 'एक भाषा, एक राष्ट्र' का नारा दिया तथा फ्रेंच भाषा के आधार पर फ्राँस तथा जर्मन भाषा के आधार पर जर्मन राष्ट्र का निर्माण हुआ, वहीं भारत ने हिन्दी को राजभाषा बनाते हुए अंग्रेज़ी को भी सह-राजभाषा के रूप में स्वीकृति दे दी। इसके अतिरिक्त संविधान की 8वीं अनुसूची में 14 भाषाओं को जगह दी गई थी। इस प्रकार व्यावहारिक रूप में भारत 14 भाषाओं का राज्य बना। वर्तमान में यह 22 हो गई हैं।

- **यूनिफॉर्म सिविल कोड के मुद्दे को टालना:** हमारे संविधान निर्माताओं में अनेक का झुकाव यूनिफॉर्म सिविल कोर्ट पर रहा, परंतु सांप्रदायिक विविधता को देखते हुए उसे भावी पीढ़ी के लिये टाल दिया गया।

- **भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन:** विभाजन से भयभीत होकर भारत सरकार ने भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन की मांग को ठुकरा दिया था, परंतु राज्यों के दबाव को देखते हुए पहली बार 1953 में आंध्र प्रदेश का भाषायी आधार पर गठन किया गया तथा 1956 में 14 राज्य तथा केंद्रशासित प्रदेश का गठन किया गया।

- **धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा:** धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देते हुए मौलिक अधिकार में अनुच्छेद 25 से 30 के बीच उन्हें संरक्षण प्रदान किया गया।

- **धर्मनिरपेक्षता:** भारत की सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए राष्ट्र निर्माण के एक प्रमुख स्रोत के रूप में धर्मनिरपेक्षता के विचार को अपनाया गया, फिर आगे 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में 'पंथनिरपेक्षता' शब्द को विशेष रूप में जोड़ा गया।

सामान्यत: ऐसा माना जाता है कि स्वतंत्रता आंदोलन के मध्य भारत ने अहिंसा व सत्याग्रह के रूप में राष्ट्रीय पद्धति

विकसित की, परंतु सच्चाई यह है कि भारत ने दुनिया को केवल राष्ट्रीय प्रतिरोध की नई तकनीक ही नहीं दी, बल्कि राष्ट्र निर्माण का नया मॉडल भी दिया क्योंकि अधिकांश नव स्वतंत्र उपनिवेश अपने स्वरूप में बहुभाषा-भाषी, बहुनस्लीय तथा बहुसांप्रदायिक थे। उनके लिये राष्ट्र निर्माण का पश्चिमी मॉडल उतना उपयोगी नहीं था, जितना कि भारतीय मॉडल।

प्रश्नः क्या भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन ने भारत की राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया? (UPSC-2016)

उत्तरः- वस्तुतः एक भाषा-भाषी क्षेत्र होने के बावजूद तेलंगाना का तटीय आंध्र प्रदेश से पृथक् होने की घटना ने भाषायी प्रांतों की उपयोगिता पर सवाल खड़ा कर दिया तथा स्वाभाविक रूप में यह वैचारिक मंथन आंरभ हो गया कि क्या भाषायी प्रांतों का गठन एक बुद्धिमत्तापूर्ण कदम था?

परंतु तथ्यों पर समग्रता से विचार किये जाने की जरूरत है। वस्तुतः स्वतंत्रता के पश्चात् भारत एक ऐसे राष्ट्र के रूप में गठित हो रहा था, जिसका महाद्वीपीय आकार था तथा जहाँ व्यापक सांस्कृतिक विविधता थी। फिर विभाजन ने संघीय व्यवस्था को बहुत प्रभावित किया था तथा राज्यों के समानांतर केंद्र को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया गया था। ऐसी स्थिति में प्रांतों के बीच अपनी भाषायी सांस्कृतिक पहचान को लेकर आशंका उत्पन्न हुई। अब तक वह विभिन्न समूह के लोग ब्रिटिश प्रेसिडेंसी शासन के अंतर्गत दबे पड़े थे। अतः उनके लिये स्वतंत्रता का अर्थ भाषायी-सांस्कृतिक पहचान की स्वीकृति भी थी। ऐसी स्थिति में अगर केंद्र सरकार उस मांग को ठुकरा देती, तो फिर इस कारण पारस्परिक अविश्वास को बल मिलता तथा यह आपसी तनाव का रूप ले सकता था।

ऐसे उदाहरण हम पाकिस्तान एवं श्रीलंका के संदर्भ में पाते हैं, जब मुहम्मद अली जिन्ना ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को यह संदेश दिया कि आप जितनी शीघ्रता से बंगाली को भूलकर उर्दू को अपना लें उतना अच्छा है, परंतु इसका परिणाम हुआ 1971 में स्वतंत्र बांग्लादेश का निर्माण। 1956 में जब भारत में भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन को स्वीकृति मिली थी, उस समय श्रीलंका तमिल लोगों पर बलपूर्वक सिंहली भाषा थोपने का प्रयास कर रहा था। अंततः श्रीलंका गृहयुद्ध का शिकार हो गया।

वहीं भारत सरकार ने भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन कर व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया। इसके परिणामस्वरूप केंद्र एवं राज्य के बीच पारस्परिक विश्वास को बल मिला। जैसा कि आशंका थी कि इससे मिट्टी के लाल (Son of the Soil) जैसी भावना को बल मिलेगा, वह निर्मूल सिद्ध हो गयी। इसके परिणामस्वरूप बहुरंगी क्षेत्रीय संस्कृतियाँ राष्ट्रीय संस्कृति में घुल-मिल गईं।

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

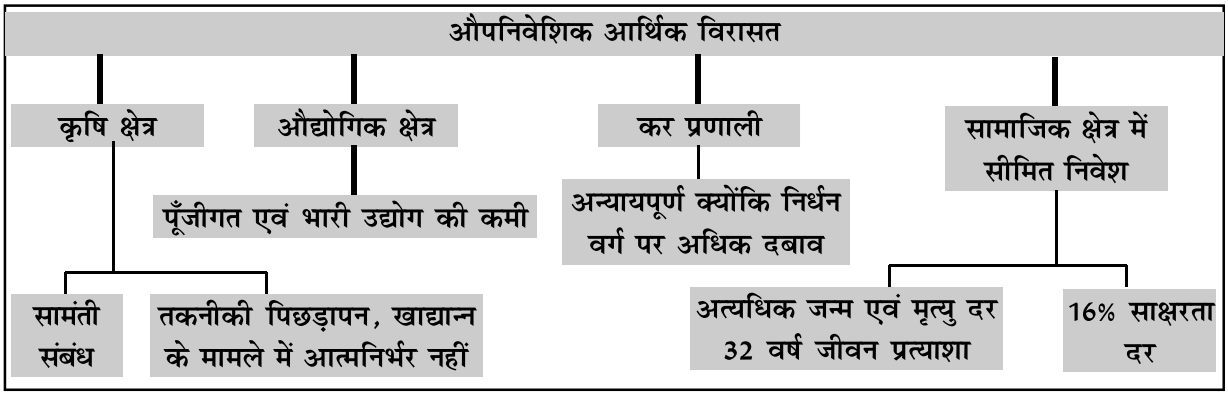

औपनिवेशिक आर्थिक विरासत

- औपनिवेशिक आर्थिक विरासत के रूप में भारत को गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, खाद्यान्न संकट, आर्थिक व तकनीकी पिछड़ापन मिला। इतना ही नहीं, भारत के आर्थिक विकास में औद्योगिक व तकनीकी पिछड़ेपन के अतिरिक्त पूँजी का अभाव एवं उद्यम की कमी भी एक महत्वपूर्ण समस्या थी।
- **कृषि क्षेत्र**– कृषि योग्य कुल 800 मिलियन हेक्टेयर भूमि में से मात्र 300 मिलियन हेक्टेयर में ही खेती होती थी, उसमें भी केवल 17 प्रतिशत भूमि ही सिंचित थी। फिर, कृषि के क्षेत्र में सामंती संबंध कायम थे तथा भूमि का वितरण असमान था। कृषि क्षेत्र तकनीकी रूप से पिछड़ा हुआ था। इनके कारण भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर नहीं था।
- **औद्योगिक क्षेत्र**– औपनिवेशक शासन के अंतर्गत भारत में औद्योगीकरण को हतोत्साहित किया गया था। इस कारण भारत में पूँजीगत एवं भारी उद्योगों का अभाव तथा प्रशिक्षित मानव शक्ति की कमी थी।
- **कर प्रणाली**– कर प्रणाली भी अन्यायपूर्ण थी। समाज के धनी वर्ग को सीमित मात्रा में कर देना होता, जबकि निर्धन वर्ग पर कर का अधिभार अधिक था। उदाहरण के लिए, भू-राजस्व एवं नमक कर का अधिभार सबसे अधिक था।
- **सामाजिक क्षेत्र में सीमित निवेश**– शिक्षा एवं स्वास्थ्य का क्षेत्र अत्यंत पिछड़ा था। स्वतंत्रता के समय भारत की साक्षरता दर मात्र 16 प्रतिशत थी, जबकि जीवन प्रत्याशा मात्र 32 वर्ष थी।

नेहरूवादी विकास मॉडल को प्रेरित करने वाले कारक

- **सोवियत रूस का समाजवादी मॉडल** – यह मॉडल सर्वप्रथम सोवियत रूस में तैयार हुआ था तथा आगे चीन ने भी इस मॉडल को अपनाया। इस मॉडल के तहत अर्थव्यवस्था पर राज्य नियंत्रण की बात की जा रही थी। इसके तहत भूमि पर निजी स्वामित्व स्थापित कर भूमि के सामूहिकीकरण (Collectivisation of Land) पर बल दिया गया, अर्थात् भूमि पर से निजी स्वामित्व को समाप्त कर भूमि को सामूहिक नियंत्रण में रख दिया गया। इसका सीधा लाभ सोवियत रूस को मिला।
- **आर्थिक मंदी के पश्चात् केनेसियन अर्थशास्त्र पर आधारित पूँजीवादी मॉडल**– 1929-30 की विश्व आर्थिक मंदी ने मुक्त अर्थव्यवस्था (Lesseiz faire) पर आधारित पूँजीवाद के युग को समाप्त कर दिया था। फिर अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स ने अर्थव्यवस्था के संचालन में राज्य को बड़ी भूमिका दे दी थी। राज्य का

काम मांग प्रबंधन करना था तथा अर्थव्यवस्था को मंदी एवं मुद्रास्फीति के चक्र से बचाना था।

- **बम्बई प्लान (1944-1945):-** बंबई प्लान के माध्यम से भारत के 8 प्रमुख उद्योगपतियों ने भी यह संदेश दिया था कि अर्थव्यवस्था में राज्य की सक्रिय भूमिका होनी चाहिए तथा राज्य को निवेश के लिए आगे आना चाहिए, जिससे प्राथमिक शिक्षा, वयस्क शिक्षा एवं स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में विकास हो सके।
- **सोवियत रूस एवं जापान की औद्योगिक सफलता-** भारत के विकास के लिए व्यापक औद्योगीकरण को आवश्यक माना गया। स्वतंत्र भारत के समक्ष दो देशों के उदाहरण थे-प्रथम जापान, दूसरा, सोवियत रूस। जापान एक एशियाई देश होते हुए भी औद्योगीकरण के बल पर काफी आगे बढ़ गया था, जबकि सोवियत रूस भी सफलतापूर्वक नाजी आक्रमण का सामना कर सका था। जवाहरलाल नेहरू व्यक्तिगत तौर पर सोवियत रूस एवं जापान के औद्योगीकरण से बहुत प्रभावित थे।
- **नेहरू का समाजवाद-** स्वतंत्र भारत की सरकार औद्योगीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना तो चाहती थी, परंतु वह आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ सामाजिक न्याय को भी सुनिश्चित करना चाहती थी। इसलिए वह औद्योगीकरण को पूरी तरह पूँजीवादी संरक्षण में लाने के पक्ष में नहीं थी, बल्कि वह मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को अपनाना चाहती थी, जिसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों के लिए जगह हो। इसलिए औद्योगीकरण में राज्य को भी भूमिका दी गई।
- **आर्थर लेविस का आर्थिक मॉडल-** नेहरूवादी आर्थिक मॉडल कहीं-न-कहीं अर्थशास्त्री लेविस के मॉडल पर आधारित था। इस मॉडल के अनुसार एक अविकसित अर्थव्यवस्था में एक कृषि अर्थव्यवस्था का क्षेत्र होता है जहाँ अतिरिक्त श्रम (Surplus Labour) उपलब्ध होता है। अगर उस श्रम को दूसरे क्षेत्रक में लगा दिया जाए तो उससे कृषि उत्पादन कम नहीं होगा। वहीं औद्योगिक क्षेत्र में उन श्रमिकों की उत्पादकता काफी बढ़ जाएगी। इससे सभी क्षेत्रकों का परस्पर विकास होगा।

नेहरूवादी आर्थिक मॉडल का लक्ष्य तीव्र औद्योगीकरण (पंचवर्षीय योजना)

- **कृषि विकास :-** औद्योगीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक मजबूत कृषि आधार का होना आवश्यक था। कृषि सुधार के क्रम में दो प्रकार के कदम उठाना आवश्यक था- प्रथम, **संस्थागत सुधार तथा दूसरा, तकनीकी सुधार।**

संस्थागत सुधार:

1. **जमींदारी उन्मूलन :** 1949 में गोविन्द वल्लभ पंत समिति की अनुशंसा पर राज्य सरकारों को जमींदारी उन्मूलन के लिए निर्देश दिया गया, परंतु 1951 में संविधान के प्रथम संशोधन के बाद ही वास्तविक रूप में जमींदारी उन्मूलन संभव हो सका। फिर इसकी सबसे बड़ी सीमा यह रही कि जमींदारी उन्मूलन के बाद भी भूमि के एक बड़े भाग पर जमींदारों का नियंत्रण बना रहा।
2. **रैयतवाड़ी सुधार कानून :** इस कानून के दो प्रमुख लक्ष्य थे। प्रथम, रैय्यतों को भूमि पर नियंत्रण दिया जाना। द्वितीय, भू-राजस्व की राशि कुल उत्पादन के 1/4 से 1/6 करना, किंतु इस क्षेत्र में भी सीमित सफलता ही मिली।
3. **भूमि हदबंदी :** 1959 में कांग्रेस ने अपने नागपुर अधिवेशन में राज्य सरकारों को भूमि हदबंदी लागू करने

की अनुशंसा की, परंतु हदबंदी की निम्नलिखित सीमाएँ थीं-

- हदबंदी की सीमा बहुत अधिक निर्धारित की गई।
- बागवानी खेती को उससे बाहर रखा गया।
- परिवार के बदले निजी व्यक्ति पर सीमा निर्धारित की गई।
- फिर हदबंदी कानून के क्रियान्वयन में विलंब के कारण भूमि को संबंधियों के नाम पर हस्तांतरित कर दिया गया।

4. **भूमि चकबंदी :** ब्रिटिश शासन का एक दुष्प्रभाव था - भूमि का विखंडन। इसके कारण उत्पादन में ह्रास हुआ था। अत: इस दोष को दूर करने के लिये भूमि चकबंदी आरंभ की गई, किंतु चकबंदी का यह कार्यक्रम महज पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सफल हुआ, अन्य क्षेत्रों में नहीं।

सीमा :-भूमि सुधार के मोर्चे पर सरकार को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इस कारण औद्योगीकरण का प्रयास भी हतोत्साहित हुआ।

भूदान आंदोलन (1951):-

- एक महान गाँधीवादी नेता विनोबा भावे ने भूमि के पुनर्वितरण का बड़ा ही शांतिपूर्ण तरीका अपनाने का प्रयास किया। इसे 'भूदान आंदोलन' कहा जाता है। भूदान आंदोलन की यह घोषणा थी कि सभी भूमि गोपाल की है। अत: भूमिधारी व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी भूमि का छठा भाग निर्धन हेतु दान में दे। विनोबा ने यह आंदोलन आंध्र प्रदेश के पोचमपल्ली नामक स्थल पर आरंभ किया। यह आंदोलन उड़ीसा में सबसे अधिक सफल रहा तथा इसके तहत लगभग 4 लाख एकड़ भूमि अर्जित की गई।
- **उपलब्धि**- यह वर्ग-समन्वय के माध्यम से आर्थिक पुनर्वितरण का लक्ष्य प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण तरीका हो सकता था और अगर यह सफल हो जाता, तो शांतिपूर्ण आर्थिक रूपांतरण का एक मॉडल बन जाता।
- **सीमाएँ**-

1. भूदान में दी गई अधिकांश भूमि या तो खेती लायक नहीं थी अथवा विवादास्पद थी।
2. इसका एक महत्वपूर्ण उद्देश्य तेलंगाना में साम्यवादी आंदोलन को प्रतिसंतुलित करना था।
3. इसका एक उद्देश्य यह भी हो सकता था कि ग्रामीण मजदूरों को थोड़ी-सी भूमि देकर उसे गाँव में रोके रखना, ताकि वे जमींदारों के श्रमिक के रूप में काम कर सकें।

तकनीकी सुधार:-

- भूमि के क्षेत्र में संस्थागत सुधार के बाद तकनीकी सुधार को प्राथमिकता दी गई और इसी का परिणाम था हरित क्रांति। भारत-पाक युद्ध के समय अमेरिकी रुख तथा अमेरिका के द्वारा पीएल-480 के तहत आर्थिक सहायता रोके जाने की प्रतिक्रिया में भारत ने खाद्य सुरक्षा को अपनी पहली प्राथमिकता दी तथा इसी क्रम में 'जय जवान, जय किसान' का नारा आया। लालबहादुर शास्त्री की सरकार ने हरित क्रांति की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि निर्मित की, परंतु वास्तविक रूप में इसका क्रियान्वयन श्रीमती इंदिरा गाँधी के काल में हुआ। मैक्सिको के गेहूँ की प्रजाति के साथ रासायनिक खाद, कीटनाशक एवं व्यापक सिंचाई के माध्यम से हरित क्रांति को आगे बढ़ाया गया।

उपलब्धियाँ-

1. खाद्यान्नों का उत्पादन 50 मिलियन टन से बढ़कर 180 मिलियन टन हो गया।
2. ट्रैक्टर, रासायनिक खाद, कीटनाशक के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के क्रम में औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिला।
3. खाद्यान्न के मामले में भारत आत्मनिर्भर हुआ। अत: विदेश नीति में इसकी आवाज अधिक स्वतंत्र हुई।

सीमाएँ-

1. इसका वास्तविक लाभ भारत के सीमित क्षेत्रों को प्राप्त हुआ, यथा-पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश।
2. अब कृषि निवेश एक बड़ी चुनौती थी, इसलिए धनी एवं निर्धन किसानों के बीच विषमता बढ़ी।
3. अत्यधिक सिंचाई एवं रासायनिक खाद के कारण भूमि में लवणता बढ़ गई।
4. जैव विविधता का भी ह्रास हुआ।

■ **विज्ञान एवं तकनीकी का विकास, नवीन संस्थाओं की स्थापना:-**

- भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने तीव्र औद्योगीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए विज्ञान एवं तकनीकी के विकास, इस्पात उद्योगों की स्थापना एवं बहुउद्देशीय सिंचाई परियोजना पर बल दिया।

विज्ञान एवं तकनीकी-

- पंडित नेहरू के लिए विज्ञान के दो पक्ष थे- प्रथम, दृष्टिकोण और दूसरा, तकनीकी। किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए यह दोनों आवश्यक हैं।
- **उद्देश्य**- जहाँ पश्चिमी देशों ने विज्ञान और तकनीकी का

उद्देश्य साम्राज्यवादी हितों का संवर्द्धन बनाया था, वहीं पंडित नेहरू ने इसका उद्देश्य राष्ट्र-निर्माण एवं गरीबी दूर करना निर्धारित किया।

संस्थागत विकास-

- C.S.I.R., पाँच I.I.T. कॉलेज की स्थापना, परमाणु ऊर्जा आयोग, परमाणु ऊर्जा विभाग का गठन किया गया। पहला परमाणु रिएक्टर बॉम्बे के ट्रॉम्बे में स्थापित हुआ। उसी प्रकार, थुम्बा में रॉकेट प्रक्षेपण केन्द्र की स्थापना की गयी। विज्ञान एवं तकनीकी के संवर्द्धन में पंडित नेहरू को अन्य व्यक्तियों का भी सहयोग मिला। ये व्यक्ति थे- होमी जहाँगीर भाभा, मेघनाथ शाहा तथा एम. विश्वैश्वरैय्या।

इस्पात उद्योगों की स्थापना का लक्ष्य-

- भारत की स्वतंत्रता के समय निजी क्षेत्र में 2 इस्पात उद्योग स्थापित थे। उनसे 1 मिलियन टन का उत्पादन होता था, परंतु नेहरू की सरकार ने 6 मिलियन टन इस्पात के उत्पादन का लक्ष्य रखा। इसके लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना से पूर्व 3 राष्ट्रों के साथ इस्पात उद्योग स्थापित करने पर समझौता किया गया, यथा-ब्रिटेन के साथ दुर्गापुर में, जर्मनी के साथ राउरकेला में, सोवियत रूस के साथ भिलाई में।

बहुउद्देशीय परियोजना:-

- भारत में उत्तरी अमेरिका और सोवियत रूस की तरह अनेक नदियाँ थीं। अत: हमारे नीति निर्माताओं ने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस की बहुउद्देशीय परियोजनाओं के मॉडल से प्रभावित होकर भारत में भी इस परियोजना के लिए जगह बनाई। इसके तहत एक तीर से तीन शिकार करने की योजना बनाई गई, यथा-सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण एवं विद्युत उत्पादन। इस प्रकार की पहली बड़ी परियोजना भाखड़ा नांगल परियोजना थी। यह विश्व की दूसरी बड़ी परियोजना थी। जवाहरलाल नेहरू ने यह घोषित किया कि 'बाँध भारत के मंदिर है'।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (तीव्र औद्योगीकरण तथा महालनोबिस आर्थिक मॉडल)

- **द्वितीय पंचवर्षीय योजना:**

- द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने तीव्र औद्योगीकरण पर बल दिया और उसी योजना में यह मॉडल तैयार हुआ जिसे महालनोबिस मॉडल के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसका मॉडल सांख्यिकी विभाग के प्रधान पी.सी. महालनोबिस ने तैयार किया था।

पी.सी महालनोबिस मॉडल की विशेषताएँ-

1. **मिश्रित अर्थव्यवस्था :** सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों की उपस्थिति।
2. **आयात प्रतिस्थापन की नीति पर बल :** अत्यधिक सीमा शुल्क लगाकर वस्तुओं के आयात को सीमित करना।
3. पूँजीगत अथवा भारी उद्योगों की स्थापना (सोवियत रूस के मॉडल पर)।
4. निवेश के लिए बचत को प्रोत्साहन तथा बचत को बढ़ाने के लिए कठोर मौद्रिक नीति।

5. रोजगार संवर्द्धन के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बल दिया जाना।
6. कुछ पूँजीपतियों के हाथों में अधिक उद्योगों के संकेन्द्रण को रोकने के लिए औद्योगिक लाइसेंस नीति का आरंभ।।

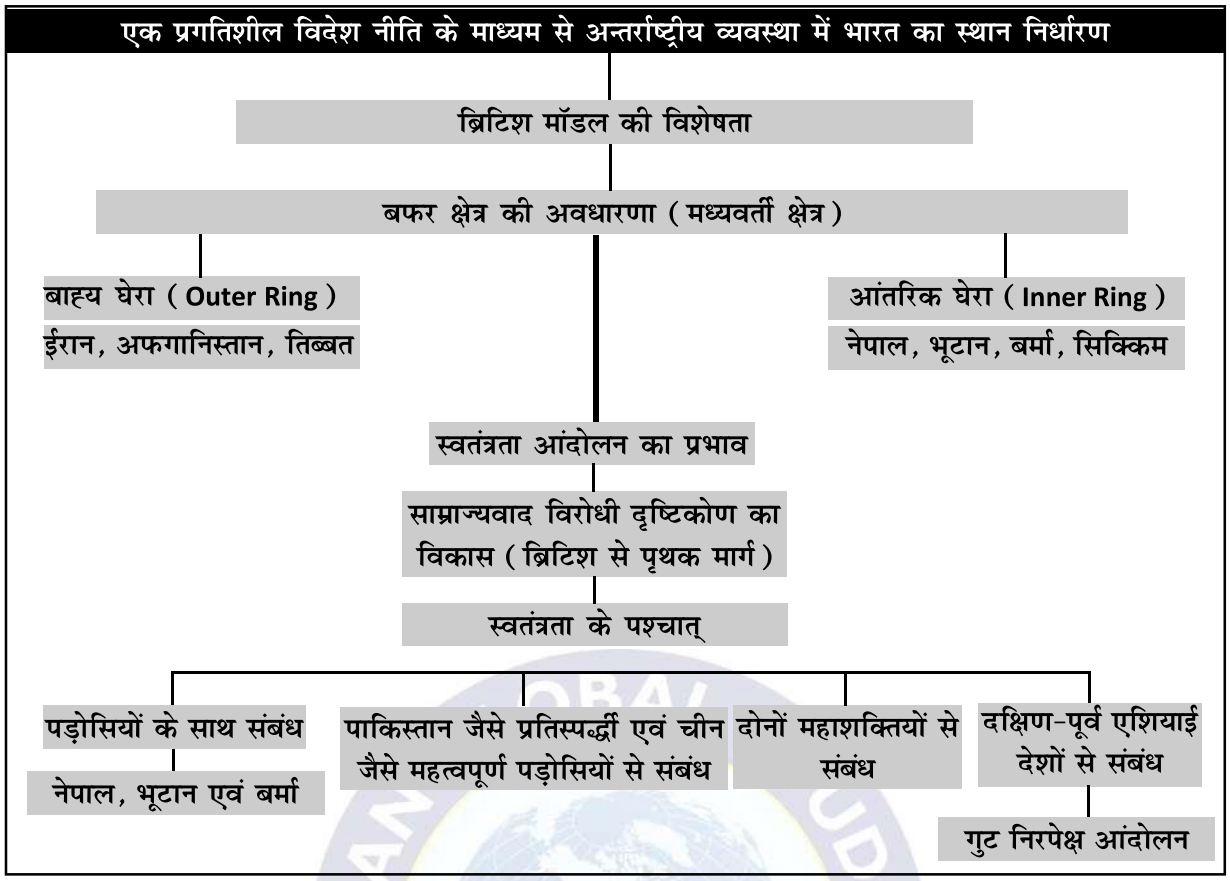

■ **ब्रिटिश मॉडल की विशेषता:-**

- भारत में अपने औपनिवेशिक हितों की रक्षा के लिए ब्रिटिश के द्वारा पहली बार बफर क्षेत्र की अवधारणा लायी गयी। बफर वह क्षेत्र था जो ब्रिटिश साम्राज्य और उसके प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्य के मध्य उपस्थित होता था। ब्रिटिश ने अपने साम्राज्य के इर्द-गिर्द दो घेरे निर्मित किये थे; यथा-बाह्य घेरा (Outer Ring) और आन्तरिक घेरा (Inner Ring)। पश्चिम से पूर्व की ओर आते हुए बाह्य घेरा था, जिसमें ईरान व अफगानिस्तान (रूस के विरूद्ध बफर क्षेत्र) तथा तिब्बत (रूस व चीन के विरूद्ध बफर क्षेत्र) शामिल थे, जबकि आंतरिक घेरे में नेपाल, भूटान, सिक्किम और बर्मा शामिल थे जोकि चीन के विरूद्ध बफर क्षेत्र का कार्य करते थे।
- ब्रिटिश ने रूसी विस्तार को नियंत्रित करने और उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु भारत और अफगानिस्तान के बीच 1893 में डूरण्ड रेखा खींची। वहीं उत्तर-पूर्व में तिब्बत के साथ अपनी सीमा स्पष्ट करने के क्रम में 1914 में मैकमोहन रेखा खींची।

■ **स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की विदेश नीति**

- भारत की विदेश नीति एक लंबे अंतराल के विकास का परिणाम है। इसका आधार स्वतंत्रता आंदोलन के मध्य ही निर्मित हो गया था तथा भारत ने एक साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टि विकसित कर ली थी। 1927 में ब्रुसेल्स में आयोजित सम्मेलन की अध्यक्षता जवाहर लाल नेहरू ने की थी। विदेश नीति में भारत की एक स्वतंत्र सांस्कृतिक पहचान थी। अत: स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति ग्रहण की।
- भारत ने अपनी विदेश नीति के तहत नस्लवाद, नि:शस्त्रीकरण के मुद्दे को प्रमुखता से उठाया। भारत नि:शस्त्रीकरण को विश्व शांति की कुंजी मानता है।

■ **पड़ोसियों के साथ संबंध**

- **नेपाल :** जुलाई, 1950 में भारत ने नेपाल के साथ एक संधि की जिसके तहत भारत ने नेपाल की सम्प्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता और स्वतंत्रता को मान्यता दी। यह भी समझौता हुआ कि किसी भी प्रकार के मनमुटाव एवं किसी भी समस्या पर हुई गलतफहमी से दोनों देश एक-दूसरे को अवगत करायेंगे।
- **भूटान :** भूटान हिमालय से घिरा और चीन की सीमा से लगा एक छोटा सा देश है तथा भारत के लिए सामरिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है। अगस्त, 1949 में भारत तथा भूटान ने चिरस्थाई शांति और मित्रता के लिए एक संधि की। भारत ने यह वादा किया कि वह भूटान के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। दूसरी तरफ भूटान विदेशी संबंधों के लिए भारत के परामर्श पर चलने के लिए तैयार हो गया।

- **बर्मा :** यू. नू. के नेतृत्व में बर्मा के संबंध भारत से मधुर रहे, लेकिन यू. नू. को हटाकर वहाँ सैन्य सरकार स्थापित हो गई तथा 1962 के पश्चात् बर्मा की विदेश नीति अपने आप में सिमट कर रह गई, यद्यपि भारत ने बर्मा के साथ एक पड़ोसी होने के नाते मित्रता और सौहार्द्र का संबंध बनाये रखा।

■ **पाकिस्तान जैसे प्रतिस्पर्द्धी एवं चीन जैसे महत्वपूर्ण पड़ोसियों से संबंध**

- **भारत-पाकिस्तान संबंध :-** आरंभ से ही पाकिस्तान की नीति रही भारत के साथ सभी क्षेत्रों में बराबरी की कोशिश। इसलिए सभी अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर पाकिस्तान ने भारत से प्रतिस्पर्द्धा करनी शुरू कर दी। उदाहरण के लिए, पाकिस्तान ने पश्चिमी एशिया के मुस्लिम राज्यों से धार्मिक संबंध स्थापित करने शुरू किये। वह पश्चिमी गुट में भी शामिल होकर शीत युद्ध का भागीदार भी बना।
- अंततः पाकिस्तान ने अपनी भारत विरोधी नीति के तहत ही कश्मीर पर हमला कर दिया तथा उसके उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। सिंधु नदी जल विवाद दोनों देशों के मध्य एक अन्य प्रमुख समस्या रही।
- **भारत-चीन संबंध :-** 1949 में माओत्से तुंग के नेतृत्व वाली नई सरकार को सर्वप्रथम भारत ने ही मान्यता दी थी, परंतु प्रारंभ से ही चीन की इस सरकार का रुख कठोर रहा। 1950 में चीन ने बिना भारत को विश्वास में लिए तिब्बत पर अधिकार कर लिया। भारत को इससे धक्का लगा। इसके बावजूद भारत ने चीन से मित्रतापूर्ण व्यवहार बनाये रखा तथा 1954 में चीन से समझौता करके तिब्बत पर उसके अधिकारों को मान्यता दे दी। इस अवसर पर भारत ने चीन के साथ आपसी संबंधों के निर्धारण के लिए पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर किया। इसमें किसी भी समस्या के निबटारे के लिए वार्ता करने तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की बात की गई थी।
- फिर 1959 में तिब्बत के शासक दलाई लामा को भारत में राजनीतिक शरण के मुद्दे ने भारत-चीन के मध्य तनाव को जन्म दिया। आगे 1962 में चीन ने उत्तरी सीमा पर हमला कर लगभग 20000 वर्ग मील भारतीय भू-भाग पर कब्जा करने के बाद एक तरफा युद्धविराम की घोषणा कर दी।

■ **महाशक्तियों के साथ भारत का संबंध**

- **संयुक्त राज्य अमेरिका (USA) :** संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत को राष्ट्र निर्माण में तकनीकी सहायता की अपेक्षा थी। परंतु अमेरिका ने कश्मीर के मुद्दे पर भारत विरोधी रुख दिखाया। दूसरी तरफ 1952 में उसने पाकिस्तान को कुछ सहायता भी प्रदान की। 1954 में पाकिस्तान को CENTO, SEATO जैसे सैनिक संगठनों का सदस्य बना दिया गया।
- अमेरिका ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन को एक अनैतिक आंदोलन कहा। उसी तरह 1961 में गोवा के मुद्दे पर भी अमेरिका ने भारत का विरोध कर पुर्तगीजों का समर्थन किया। निम्नलिखित कारणों से भारत एवं अमेरिका के बीच मतभेद था-
  1. शीतयुद्ध के संबंध में भारत एवं अमेरिका की सोच अलग थी। भारत ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन का समर्थन किया था।
  2. वस्तुतः अमेरिका का झुकाव ब्रिटेन की ओर था तथा ब्रिटेन का दृष्टिकोण भारत विरोधी था।
  3. भारत की विदेश नीति में उग्र साम्राज्यवाद विरोधी रुख था।
- **सोवियत रूस :** प्रारंभ में भारत एवं सोवियत रूस के बीच संबंध बहुत शिथिल रहे क्योंकि रूस को आशंका थी कि भारत अभी साम्राज्यवादी प्रभाव में है।
- परंतु स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस रूस की आर्थिक सफलता का एक बड़ा प्रशंसक रहा था। आगे जब रूस ने महसूस किया कि भारत साम्राज्यवादी प्रभाव से मुक्त है, तब वह भारत की ओर झुका। 1951-52 में सोवियत रूस ने भारत में कुछ खाद्य सामग्री भेजी। कश्मीर के मुद्दे पर भी भारत को रूस का समर्थन मिला, विशेषकर स्टालिन की मृत्यु के बाद भारत एवं रूस के संबंधों में तेजी से सुधार हुआ। सोवियत रूस के नए प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव और नेहरू के बीच प्रगाढ़ मित्रता हुई।
- रूस ने आर्थिक आयोजन तथा औद्योगीकरण को पूरा करने में भारत को मदद् करने की पेशकश की। दूसरी तरफ अमेरिका ने मदद् करने में अनिच्छा दिखायी।
- विशेषकर चीनी युद्ध के बाद अर्थात् 1963 में रूस ने भारत को सैनिक सामग्रियाँ प्रदान करना भी प्रारंभ किया।

■ **दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों से संबंध**

- **थाईलैंड :** थाईलैंड जो अतीत में कभी उपनिवेश नहीं रहा था, सितंबर, 1954 में दक्षिण-पूर्व एशियाई सहयोग संगठन (सीटो) का सदस्य बन गया। सीटो का मुख्यालय भी बैंकॉक में स्थापित हुआ। इसके बावजूद कुछ सांस्कृतिक साम्यता तथा सामान्य हितों के मद्देनजर भारत का संबंध इस देश से भी मधुर बना रहा।
- **कम्बोडिया :** प्रिंस नरोत्तम सिंहानुक की अध्यक्षता में

इस देश का संबंध भारत से मित्रतापूर्ण रहा। अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोग का अध्यक्ष होने के नाते भारत ने संतोषजनक ढंग से इस देश की भारत तथा चीन से लगी सीमाओं का निर्धारण किया। 1955 के बांडुंग सम्मेलन में कम्बोडिया तथा भारत ने सक्रिय हिस्सा लिया।

- **वियतनाम (उत्तर तथा दक्षिण) :** भारत वियत मिन्ह की समाप्ति तथा इसके दो भागों में बंटने तथा इन दोनों वियतनामों के आपसी संघर्ष से काफी चिंतित था। भारत का एक परामर्शदाता के स्तर पर वियतनाम लोकतांत्रिक गणराज्य तथा वियतनाम गणराज्य दोनों से संबंध था। लेकिन दक्षिण वियतनाम जहाँ न्गो-दिन्ह-दियेम का शासन था, अमेरिका के प्रभाव में था। भारत ने क्रमशः 1957-58 में दिल्ली आने पर न्गो-दिन्ह-दियेम तथा हो-ची-मिन्ह का भरपूर स्वागत किया। हो-ची-मिन्ह तथा हिन्द-चीन में उसके स्वतंत्रता संग्राम को भारतीय जनता का पूरा समर्थन प्राप्त था।
- **फिलीपींस :** सीटो के सदस्य के रूप में फिलीपींस पश्चिमी गुट का मित्र था। भारत का इस देश से द्वैत संबंध स्थापित हुआ, परंतु इस देश से भारत के गहरे आर्थिक-राजनीतिक संबंध नहीं जुड़ पाए क्योंकि इसने पश्चिमी गुट से न केवल सैन्य संधि की, बल्कि अमेरिका को क्लार्क वायुसेना अड्डा तथा सुबिक सैन्य अड्डा भी प्रदान किया।
- **मलेशिया :** मलेशिया में मलय, चीनी और भारतीय समुदाय के लोग रहते थे तथा यहाँ लोकतांत्रिक सरकार स्थापित थी। इस देश ने दक्षिण-पूर्व एशियाई बंधुत्व को मजबूत करने की दिशा में भारत का समर्थन किया तथा अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत के साथ खड़ा नजर आया। भारत के साथ इस देश के गहरे आर्थिक संबंध स्थापित हुए। मलेशिया ने भारतीय संयुक्त उद्योगों का स्वागत किया। नेहरू तथा अब्दुल रहमान टुंकू दोनों का अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर दृष्टिकोण समान रहा था। भारत ने इण्डोनेशिया की मलेशिया को ध्वस्त करने की योजना का विरोध किया।
- **इण्डोनेशिया :** मार्च, 1951 में नेहरू तथा इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो ने चिरस्थाई शांति तथा अपरिवर्तनीय मित्रता को बढ़ाने के लिए मैत्री की संधि की। आरंभ में इण्डोनेशिया ने अफ्रीकी-एशियाई एकता को दृढ़ करने के भारतीय प्रयास का समर्थन किया। उसने उपनिवेशवाद समाप्त करने में भी भारत का साथ दिया तथा 1955 के बांडुंग में अफ्रीकी-एशियाई सम्मेलन के नेतृत्व में पुरानी स्थापित शक्तियों के खिलाफ नव उदित शक्तियों के संघर्ष की अवधारणा रखी। इसने उपनिवेशवाद, नव उपननिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ कठोर रुख अपनाया, परंतु भारत अपने विदेश संबंध में नरम रुख का पक्षधर रहा। इस तथ्य ने भारत-इण्डोनेशिया संबंध को प्रभावित किया। यही कारण है कि जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो इण्डोनेशिया चुप रहा। यहाँ तक कि सुकर्णो ने पश्चिमी गुट के विरोध में जकार्ता-पिन्डी-पेकिंग-प्योंग योंग के निर्माण का समर्थन किया।
- सितम्बर, 1964 में अयूब-सुकर्णो ने कश्मीर मामले में पाकिस्तान का समर्थन किया तथा नव उदित शक्तियों से पाकिस्तान का समर्थन करने को कहा।

■ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन

- गुटनिरपेक्षता का साधारण अर्थ है दोनों गुटों (पूँजीवादी तथा समाजवादी) से अप्रभावित होकर महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना। परन्तु गुटनिरपेक्षता का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय मामलों में तटस्थता नहीं है। गुटनिरपेक्ष देश अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति तटस्थ नहीं रहते हैं, बल्कि एक ऐसी स्पष्ट और रचनात्मक नीति अपनाते हैं जो विश्व शांति कायम रखने में सहायक हो।
- 1955 के बांडुंग सम्मेलन के पश्चात् 'गुटनिरपेक्ष' शब्द सामने आया। आगे एशिया तथा अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों ने दोनों ध्रुवों के साथ संयुक्त हुए बिना अपने स्वतंत्र राष्ट्रीय विकास के लिए 1961 में बेलग्रेड में एक सम्मेलन का आयोजन किया। इसी के साथ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की शरुआत हुई। मार्शल टीटो (यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति) ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की।
- प्रथम गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में गुटनिरपेक्ष देशों का जोर सहअस्तित्व और गुटनिरपेक्षता के आधार पर स्वतंत्र नीति अपनाने, राष्ट्रीय स्वतंत्रता का समर्थन करने, किसी बहुपक्षीय सैन्य संधियों में हिस्सा नहीं लेने, बड़ी शक्तियों को अपने यहाँ सैनिक अड्डा बनाने की अनुमति नहीं देने पर रहा।

■■■